[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3611

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

नृत्यकला में रंगों का समन्वय

डॉ. प्रियंका वैद्य
नृत्य विभाग (सहा. प्रा.)
शा. महारानी लक्ष्मीबाई स्ना. कन्या महा., किला भवन, इन्दौर

सृष्टि में सभी पदार्थ चर, अचर, प्रकृति पौधे, पुष्प सभी रंगों से सराबोर हैं। यह सारी सृष्टि रंगों में डूबी हुई है। प्रत्येक वस्तु का अपना अलग रंग है। हर फूल, पौधा पल्लवित होने से लेकर मुरझााने तक कई रंग व आकार में दिखाई देता है। हर वस्तु का स्वरूप, रंग व आकार हमें रंगों का हमारे जीवन में महत्व को दर्षाता है। कहते हैं "नृत्यमयं जगत्" अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् नृत्यमय है। इस प्रकृति व रंगों से मनुष्य ने अपना जीवन को संवारा व इसके माध्यम से अपनी मनोभावनायें व्यक्त की। पंछी से उड़ता, नाचता व गाना सीखा तो प्रकृति के रंगों से स्वयं को सवांरना सीखा। कहते हैं एक पेड़ जो अचर है परन्तु जब हवा चालती है तो उसकी टहनीयाँ एक लय में डोलती है, फिर मनुष्य तो संवेदनषील प्राणी है वह सुख में, दुःख में क्रोध में कला को अपनी प्रतिक्रिया का माध्यम बना लेता है। सृष्टि के कण–कण जन रंगों में झूम उठते हैं, फूल–पत्तों के रूप रंगीन हो अपना हृदय खोलकर नवजीवन का स्वागत करते हैं, तो सारी सृष्टि गीत, संगीत, सुगंध और रंग लेकर उमड़ पड़ती है।

प्राचीन षास्त्रों में 64 कलाओं में गायन, वादन, नृत्य, मूर्तिकला, काव्य, चित्रकला इन सबका विषेष महत्व है। ये ललित कलायें एक दूसरे से अलग होते हुये भी एक दूसरे के पूरक हैं। संगीतकार धुन बनाते समय किसी चित्र को कल्पना करता है, कवि अपने काव्य की रचना में अमूर्त स्वरों को छन्द का वाहन बनाता है। चित्रकार या षिल्पकार षब्द के आश्रय से विषय वस्तु को अपने मस्तिष्क में आकार देकर उसे मूर्त रूप प्रदान करता है। कवि किसी चित्र की कल्पना करके काव्य का सृजन करता है और चित्रकार काव्य सुन कर स्वर–लहरियों में खो कर अपनी कृति का निर्माण करता है और नृत्यकार इसी काव्य, व राग रागिनियों व को अपनी कला से मूर्त रूप दे दर्षकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। षास्त्रीय नृत्यों में रंगों का प्रयोग नया नहीं है। नाट्य षास्त्र में अभिनय वेदों में आहार्य व चित्राभिनय को स्थान प्राप्त है। आहार्य अभिनय में जहां नेपथ्य विधान के चारों प्रकार 1) पुस्त (Models), 2) अंलकार (सज्जा), 3) अंग रचना (आकृति परिवर्तन) एवं 4) संजीव (जीव–जंतु का नाट्य में प्रयोग) होता है वहीं चित्राभिनय के माध्यम से नृत्य में प्रयुक्त होने वाले प्राकृतिक व चित्रात्मक प्रतीक को प्रदर्षन में दर्षाना अभिनय षिल्प का एक विधान माना है।

वर्तमान में नृत्य–नाट्य (बैले) में रंग व प्रतीकात्मक विधा ने कला को दर्षकों से जोड़ दिया है। दर्षक मात्र रंगों के उपयोग से ही कई बार कथानक को समझ जाते हैं। नाट्यषास्त्र में रस को रंगों के आधार पर भी वर्णित किया गया है। श्रृंगार के लिए ष्याम, हास्य के लिए ष्वेत, करूण के लिये कपोत (घटेरिया), रौद्र के लिये लाल, वीर के लिये गौर, भयानक के लिए काला, वीभत्स के लिये नीला, अद्भुत पीत रंग का प्रयोग बताया गया है। वास्तव में मूलरंग पाँच ही माने गये हैं – सफेद, पीला, लाल, नीला व काला। इन्हीं रंगों के मेलजोल से ललित कलाओं में रंगों का प्रयोग होता है।भारत के लोक एवं षास्त्रीय नृत्य व नाट्य जैसे – नौटंकी, स्वांग, रासलीला, यक्षगान, कुडिआट्टम, कुचिपुड़ी, कथकलि, मणिपुरी, इन सभी में रंगों का अपना विषेष महत्व है। इन सभी नृत्य एवं नाट्य कलाओं में कहानी के अनुसार रंगों द्वारा मेकअप, परदों व वस्त्रों से हर पात्र अपनी पहचान उस पात्र के अनुरूप कर लेता है। रंगों के लोपन से व वस्त्रों से पुरूष–स्त्री व स्त्री–पुरूष का पात्र कर लेता है और दर्षकों को इसका पता भी नहीं लगता। षास्त्रीय नृत्यों जैसे कुडिटयम, कथकलि, मणिपुरी में मुख लोपन से पात्र को पहचाना जाता है। देवताओं, सज्जन पात्रों का मुख हरा, दानव राक्षस पात्रों का मुख लाल एवं उसमें भंयकरता लाने के लिए काले रंग का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों का मुख सफेद, किंतु षूर्पणखा, पुतना जैसी राक्षस पात्रों का मुख राक्षस के समान रंगों से ही बनाया जाता है। डाकुओं का मुख काला, साधुओं का साधारण रंग का मेकअप होता है। विदूषक का मुख इस प्रकार बनाया जाता है कि देखकर अपने आप हंसी आ जाये, मणिपुरी में रास नृत्यों के प्रकारों में भी विभिन्न रंगों का प्रयोग बताया है, तो कुचिपुड़ी, ओडीसी व कथक के कई प्रतिभाषाली नर्त्तक नटराज व देवी–देवताओं की आकृति रंगोली के रंगों से अपने पद संचालन से बना देते हैं।

भारतीय काव्य एवं श्रृंगार साहित्य कला का सबसे प्रासंगिक विषय है नायक नायिका भेद। इसके अर्न्तगत अष्टनायिकाओं के सन्र्दभ में प्रत्येक नायिका अपनी श्रृंगारिक व भावात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा नायक के विभिन्न आचरण पर प्रकाष डालती है। इसी में सबसे पहली प्रोषित पतिका नायिका श्रृंगार त्याग कर नायक की प्रतीक्षा करती है, वासक सज्जा पूरे सोलह श्रृंगार से सज्ज होकर नायक की प्रतिक्षा करती हैं, स्वाधीन पतिका में नायक नायिका में रूप अंलकार पर मोहित है तो खण्डिता नायक के वस्त्रों पर परस्त्री के रति चिन्ह (सिंदूर, काजल) देख कुपित होती है, कलहान्तरिता नायक के जाने पर पछताती है। इन सब

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

में अभिसारिका एक नायिका है जो नायक से मिलने जाती है तो दिन व स्थान के अनुरूप वस्त्रालंकार से सुषोभित होकर, षुक्लाभिसारिका काले व नीले रंग के वस्त्र तो दिवाभिसारिका दिन के अनुरूप वस्त्राभूषण धारण कर अभिसार के लिये जाती है। इस प्रकार नायिका प्रसंग, रस, के माध्यम से रंगों का समन्वय नृत्यकला व साहित्य कला में दिखाई देता है। षास्त्रों में तो षड़ऋतुओं में भी रंगों का प्रयोग बताया है जो नर्त्तक नृत्य प्रदर्षन में बड़े ही सुन्दर व आर्कषक अंदाज में परदों (यवनीका), वस्त्रों व प्रकाष संयोजन के माध्यम से बता सकता है। ग्रीष्म में केसरिया, वर्षा में नीला (आसमानी), षिषिर में गुलाबी, हेमंत में लाल, षरद में सफेद, बसंत में पीले रंगों का प्रयोग कर अपनी नृत्य कला को नया आयाम देता है।

भारत का सबसे सुन्दर व रंग–बिरंगा त्यौहार है होली, जिसे नृत्य, संगीत, लोकगीतों, कविताओं, चित्रों द्वारा न जाने कितने प्रकारों से बताया गया है। कथक में होली पर भाव करना उस पर ठुंमरी गतभाव, कवित, गीत, के पदों को होली के रंगों के प्रयोगों द्वारा दिखया जाता है। राधाकृष्ण की होली लोक नृत्य, लोक गीतों व कविताओं में षास्त्रीय व लोक दोनों प्रकार के नृत्यों में प्रसिद्ध है। रंग–बिरंगे रंगों के प्रयोग के साथ नर्त्तकों की नृत्यात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा जब कलाकार होली को प्रदर्षित करता है तो दर्षकगण की झूम उठते हैं।

चित्रकार एवं नृत्यकार में एक प्रयोग समान है जब नृर्तक नृत्य करते समय अपने समस्त अंगोपांगो का संचालन इस प्रकार करता है जिससे उसकी आकृति में एक चित्रात्मक रूप लक्षित होता है। इसी प्रकार चित्र बनाते समय चित्रकार भी यह ध्यान में रखकर चित्र बनाता है कि आकृतियों के हाव–भाव, कटि, उरू एवं दृष्टि का प्रयोग संतुलित व आर्कषक लगे। प्रत्येक आकृ ति के अंकन के समय चित्रकार को उस आकृति के दांये–बांये समान स्थान रखना पड़ता है ताकि आकृति–निवेषन संतुलित रहे। नर्त्तक को भी मंच पर यह ध्यान रखना आवष्यक है कि उसकी स्थिति कहां और किस रेखा पर अधिक संतुलित रहेगी। यदि नर्त्तक रेखा और विभाजित संतुलन का ध्यान नहीं रखता तो दर्षकों को उसका प्रदर्षन कदापि आकृष्ट नहीं कर सकता।

किसी भी नृत्य व नाट्य प्रदर्षन की सफलता के लिये कला में निपुणता के अतिरिक्त सहायक उपकरणों जैसे मंच व दृष्य सज्जा, प्रकाष व्यवस्था, वेषभूषा, रूप सज्जा का बहुत महत्व है। मंच सज्जा व दृष्य सज्जा में चित्रांकित रंग सज्जा जिसमें, पर्दों व पार्ष्व में रंगों का प्रयोग किया जाता है, प्रकृतिवादी रंग सज्जा में बॉक्स स्टेज पर मंदिर, गांव, दूर्ग, कारागृह का दृष्य प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार नृत्यकला व नाट्य में प्रकाष के लिये रंगों का प्रयोग बादल, बिजली, वर्षा, चांद, सूर्य को दर्षाने के लिये होता है, इन के उपयोग के लिये फुट लाइट, फ्लड लाइट, स्पॉट लाइट व इफैक्टस प्रोजेक्टरों का उपयोग कलाकार द्वारा किया जाता है। इन रंगीन स्ट्रोब लाइट के प्रयोग से धीमे घूमती हुई नर्त्तकी तेजी से घूमती हुई प्रदर्षित होती है। रूप सज्जा जिसे हम साधारण भाषा में मेकअप कहते हैं नृत्य व नाट्य कला का आधार स्तंभ है। स्त्रियों के सोलह श्रृंगार का वर्णन हमारे कवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों का प्रियविषय रहा है। भरतमुनि ने भी अपने नाट्यषास्त्र में 29 अध्याय में नेपथ्य विधि के अन्तर्गत 'अंगरचना' का विस्तार से विचार किया है। नाट्य में वेष–न्यास आवष्यक ही नहीं अनिवार्य है। 'नख–षिख' श्रृंगार व अंगों पर चित्रकारी करना इसके अंतर्गत आता है। मानवीय रूप की अभिव्यक्ति उसकी मुखाकृति से ही होती है एवं दर्षक रूप सज्जा के माध्यम से भावों को संतुलित का नृत्य व नाट्यकला का आनंद प्राप्त करते हैं। यही नृत्य व नाट्यादि सम्पूर्ण मंचीय कलायें जीवन की सुंदर अनुकृति है एवं नवीन आधुनिक रंगीन उपकरणों से ये मंचीय कलायें और अधिक विकसित हो रही है।

कहते हैं कि "पानी रे पानी तेरा रंग कैसा जिसमें मिलाया उस रंग जैसा" यह गीत बताता है कि जिस प्रकार पानी का कोई रंग नहीं होता, रंग विहिन इस पानी में जब लाल, हरा, नीला, पीला कोई भी इन्द्रधनुषीय रंग की एक बूंद भी मिल जाये तो वह उस पानी को उस रंग का बना देता है तो फिर मनुष्य तो ईष्वर की वह अमूल्य धरोहर है जो एक नये जीवन को जन्म देती है मनुष्य उस जीव को प्रकृति के सभी रंगों से परिचित करवाता है। मनुष्य रंगहीन पानी की तरह इस दुनिया में आता है और प्रकृति के द्वारा दिये गये छोटे–छोटे रंगीन छिटों से अपनी दुनिया को रंगीन बना लेता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *संगीत विषारद – बसंत*
2 *एकादष नाट्य संग्रह – डॉ. पुरू दाधीच*
3 *कथक नृत्य षिक्षा (भाग–2) – डॉ. पुरू दाधीच*
4 *कला प्रसंग (निबंध संग्रह) – श्री रामचन्द्र शुक्ल*